आपातकाल में सृजन फुलवारी

विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

आपातकाल में सृजन फुलवारी

विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-165-7
संपादक- डॉ. प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी
मुख्य कार्यालय- 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331
दूरभाष- (कार्या.) 07633-253159
मोबाईल- 9424765259
ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाईट- www.antrashabdshakti
प्रथम संस्करण- 2020, विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'
मूल्य- 50.00 रूपये
मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY VIJAY KUMAR AGRAHARI 'ALOK'

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

आपातकाल में सृजन फुलवारी

सादर नमन,

आज देश जिस भयावह स्थिति से गुज़र रहा है उस स्थिति में देश का हर एक व्यक्ति या ये कहें कि विश्व का प्रत्येक मानव आर्थिक, मानसिक और शारीरिक रुप से व्यथित है। कोरोना (covid19) जैसी महामारी ने पूरे विश्व को नैराश्य के दौर में लाकर खड़ा कर दिया है।

ऐसे समय में जब हमें अनुशासित रहना है, सामाजिक दूरी बनाकर सीमित संसाधनों में जीना है, एकदम से अपनी दिनचर्या को बदलकर एकाकी जीवन यापन का अभ्यास करना है और मन में महामारी की दशहत से होने वाली नकारात्मकता और निराशा को भी नियंत्रित करना है तब सबसे सही हल होता है खुद को रचनात्मकता से जोड़ लेना। जो व्यक्ति जिस कला से जुड़ा हो उसे मनः स्थिति के अनुरुप उसी कला में सृजनात्मक हो जाना चाहिए।

बस इसी विचार ने एक दिन प्रेरित किया कि अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन से जुड़े रचनाकारों को एक सृजनात्मक सरप्राइज़ दिया जाए।

अन्तरा शब्दशक्ति और जीवन के सहभागी प्रिय 'समकित सुराना' से परामर्श किया तो उन्होंने भी सहर्ष हामी भर दी। मेरे संपादन के साथ तकनीकी संपादन की सारी जिम्मेदारी हमारे तकनीकि संपादक प्रिय 'संदीप सोनी' ने ले ली और इक्यावन दिन के लॉकडाउन में एक साथ 111 किताबों का निःशुल्क ईसंस्करण तैयार किया जिसका मुद्रित संस्करण देश के परिस्थितियाँ सामान्य होते ही रचनाकारों की इच्छानुसार सशुल्क किया जा सकेगा।

अन्तरा शब्दशक्ति संस्था के सभी सदस्यों ने सृजन को हमेशा प्रेरित किया है जिसके लिए मैं सभी की हृदय से आभारी हूँ।

आपातकाल में कुछ न करने की सज़ा को कुछ करके खत्म करने में सहयोगी बने समकित, संदीप-टीना सोनी, बच्चों और पूरे परिवार की आभारी हूँ जिन्होंने हर पल मुझे मजबूत बनाए रखा।

आशा है ये सरप्राइज़ सभी रचनाकारों को उत्साहित करेगा और पाठकों को हमारा यह प्रयास पसंद आएगा। हमें प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

सादर आभार

संस्थापक एवं संपादक
अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
एवं पंजीकृत संस्था
डॉ प्रीति समकित सुराना

अनुक्रमणिका

1.	पिट्टू अब तक सजा हुआ है	6
2.	इस्से पहले कि शहर मुर्दाघर हो जाए	7
3.	एक आदमखोर घूमता है कहीं	8
4.	माना कठिन दौर है	9
5.	दिले दिल्ली रो रही है	10
6.	क्या करना है उनका	11
7.	विभ्रम की चित्रावलियां	12
8.	तट की प्रतीक्षा	13
9.	लम्बा हरा दर्द	14
10.	संबंधों के अनुबंधों में	15
11.	सदियों से संध्या यूं ही आती है	16
12.	फुरसत नहीं मिलती	17
13.	हम भटक कर कहाँ से कहाँ आ गयें	18
14.	जाने क्यूँ लोग कटे रहतें हैं	19
15.	बन गयी हादसों का शहर जिंदगी	20
16.	कहीं गहरा है स्वाद खोने का पाने से	21

पिट्टू अब तक सजा हुआ है

अब भी पिट्टू सजा हुआ है।
जीत चुका था मै तो बाजी
मां ने अंदर बुला लिया था
फिर सब अंदर बुला लिये थें।

अब भी अंदर बन्द पड़े है।
पिट्टू अभी सजा हुआ है।
सोनू, बब्बू, राजा, दीपू
अजमत, राकी और दीपेन्दर
नहीं कोई भी बाहर आया
दुपहर बीती शाम हो गयी
पिट्टू अब तक सजा हुआ है।

मां भी घर में ही रहती है
कुछ निकालती कुछ धरती है।
पापा जाने किस्से डरते है।
बार बार पैसे गिनते है।
बाहर वो भी नहीं निकलते।
आते थें दिन ढलते ढलते।
रिक्शे पर तो धूल जम गयी।
पिट्टू फिर भी सजा हुआ है।

इस्से पहले कि शहर मुर्दाघर हो जाए

इस्से पहले कि शहर मुर्दाघर हो जाए
इक बार जीते जी मर कर देखते है हम।

तुम रिश्तों में फासले की कहते थे
चलो फिर ये आजमा कर देखते है हम।

कुदरत को कगार कर जी रहे थे न
दरकिनार हो अब असर देखते है हम।

मौत ने इस कदर कहर बरपा है
जिन्दगी को घबरा कर देखते है हम।

आखिरी वक्त है "अलोक" तौबा कर
जुदा होकर या जुदा कर देखते है हम।

एक आदमखोर घूमता है कहीं

एक आदमखोर घूमता है कहीं।
साफ छिपता भी नही, सामने आता भी नहीं।

न कहीं शोर है, न फकत आवाजें
इस वीराने में कोई आता जाता भी नहीं।

एक दहशत सा बरपा है हर कहीं
कब गुजरेगा ये दौर, कोई बताता भी नहीं।

अलग शहर में कैद होगा बेटा भी
फोन तो आता है चैन क्यूँ आता ही नहीं।

कुदरत से मुकाबले में मुँह से गिरेगे
पता होता भी तो इन्सान निभाता ही नहीं।

माना कठिन दौर है

माना कठिन दौर है।
पर क्या और ठौर है।

ये दौर भी गुजरेगा।
लम्हा फिर से आयेगा।

मिल बैठगें फिर से।
फिर से किलकारियां होगीं।

बहारें होगीं फुलवारियां होगी।
हिज़्र की रात ये लम्बी ही सही।

विसाले यार को
किस-किस ने कितनी-कितनी सही!

दिले दिल्ली रो रही है

इंसानियत खो रही है
दिले दिल्ली रो रही है।

वो अना के रुख पे काबिज
कितने ख्वाबों के दम घुटे हैं।

किस मरकज से मुअस्सिर
मुल्क जलाने को सब जुटे हैं।

किलकारियां दफन हैं।
गुमशुदा अमन है।

वीरानगी है फैली
खामोशी ही सो रही है।

दिले दिल्ली रो रही है।

विभ्रम की चित्रावलियां

देर रात
मुझे खाली पाकर
विभ्रम की चित्रावलियां
सपना बन सताने आतीं हैं।

बाहर कुछ बादल बरस रहें हैं।
शाम से ही घुमड़ रहें थें।
दिन में भी भटकते दीखे थे कई,
पर सूरज की प्रखरता के आगे
उनकी चली नहीं थी।
अखिर दिन सो गया था
थकान तो उसे भी लगती है।

मै जग गया था।
मेरे विचारों के बादल
खूब बरस कर रीते हो गयें थें।
पर बाहर बादलों का दिल
अभी हल्का नहीं हुआ था शायद।

तट की प्रतीक्षा

बरसों से
इसी तरह
लहरों को
उमड़ता देखा है।

बड़े अरमान लिये
दौड़ती हुई
तट तक
आती है।

पर फिर लौट जाती है
चुपचाप
मुँह लटकाए
सागर के पास।

तट
हमेशा से
बाँह फैलाए
खड़ा रहता है।

लम्बा हरा दर्द

नसों में रिसता है
हर शाम, लम्बा हरा दर्द।
ठहरे पानी में उग आये काई सा
जो बहता है
पीछे एक टीस छोड़ता हुआ।

धीरे-धीरे पूरा बदन हरा हो जाता है।
उसके काले होने से पहले
मुझे पानी का झोंका देना है।
पानी जमने से बदबू आती है
मैं सभ्य लोगों के बीच रहता हूँ।

खुशकिस्मत हूँ
कि पानी का अथाह श्रोत है अपने पास।
मैं हाथ पांव झाड़ कर उठ खड़ा होता हूँ
कमर कस लेता हूँ फिर से।
हाँ, हरा दर्द अब बह गया है।

हैं, कुछ जिद्दी रेशे
तलहटी में जम कर बैठ गये हैं
फुर्सत मिले, तो सोचता हूँ
क्या करना है उनका।

संबंधों के अनुबंधों में

संबंधों के अनुबंधों में लालसा लहु लुहान पड़ी है।
सपनों ने कपड़े बदलें हैं मंचन को तैयार खड़ी है।

खामोशी के पत्थर पर मै मनुहारों का गीत लिख रहा
जीवन की द्यूत क्रीड़ा मे संख्या ऐसी आन गिरी है।

अट्टहासों के बाज़ारों में अरमानों के दीप सजे हैं
मेरे निमित्त धरा अँधेरा यह प्रकाश की धोखाधडी है।

द्वंदों के चौराहे पर कर्तव्यों की नैया ठिठकी
एक तरफ तो मर्यादा है एक तरफ मेरी पगड़ी है।

जीवन के ऊहापोह में तुम ही रघुवर राह दिखाओ
एक तरफ राधा प्यारी है एक तरफ रुक्मणी है।

सदियों से संध्या यूं ही आती है

उतरती है आसमां से
लहराती,
बलखाती,
आहिस्ता-आहिस्ता
सिंदूरी आंचल उड़ाती
उंजाले की करधनी डाले
क्षितिज की पतली कमर पर।

देखता
बस देखता रहता है
एकटक
समय के इस पार खड़ा
एक पेड़
सूखी अंगुलियों से बिम्ब थामे।
सदियों से
संध्या यूं ही आती है।

फुरसत नहीं मिलती

फुरसत नहीं मिलती कि कुछ मिसरे भी जोडे जाएं।
चन्द मसाईल खुदा के वास्ते भी छोडे जाएं।

तुम अपनी तसल्ली से तनिक जो तौबा करो
जन्नत से निकलने को फिर सेब कहीं तोडे जाएं।

ये रास्ता आदम की बस्ती से हो के जाता है
रुख़े परवाज इस सिम्त ना कभी मोड़े जाएं।

ये शतरंज की बिसात है यहाँ राजा ही रहेगा
प्यादे जाएं, हाथी जाएं या कि सभी घोड़े जाएं।

खुलेगा उनके भी रहनुमाई का काला चिट्ठा
गुजरे सालों के खाते औ बही जोड़े जाएं।

हम भटक कर कहाँ से कहाँ आ गयें

हम भटक कर कहाँ से कहाँ आ गयें।
सुबह देखा नज़ारा तो घबरा गयें।

सभी नंगे खडे थें बडे शान से,
हम थें कपडो में पूरे तो शरमा गयें।

आशियाना वो अपना हमें याद है,
इसके आगे तो आँखों में अश्क आ गयें।

निकले तो थें उनके नज़ारे को पर,
पाँव भट्के और फिर मैकदे आ गयें।

लिए अपना पता हम भटकते रहें,
नीड के तिनकें तिनकें यूँ छितरा गयें।

जाने क्यूँ लोग कटे रहतें हैं

जाने क्यूँ लोग कटे रहतें हैं।
क्यूँ इतने सहमे डरे रहतें हैं।

कोई खुल के मिलता ही नहीं,
अपना वजूद सब धरे रहतें हैं।

शायद डरतें हैं अपनी तौहीनी से,
जब भी मिलतें हैं तने रहतें हैं।

उम्र दबे पाँव निकल भी गयी,
आदमी वहीं पर पड़े रहतें हैं।

मुहब्बत नये मायने तालाश करे,
वे पत्थर नहीं कि गड़े रहतें हैं।

बन गयी हादसों का शहर जिंदगी

बन गयी हादसों का शहर जिंदगी।
ढ़ायेगी और कितने कहर ज़िंदगी।

उम्मीद की कश्ती आती ही होगी,
टूटती तभी तो लहर लहर ज़िंदगी।

जाते हुए भी जो आँखें चुरा ले,
निभाये न दुश्मनी इस कदर ज़िंदगी।

सपनों में हम फिर भी मिलेंगे,
हो इधर जिंदगी या उधर ज़िंदगी।

कहीं गहरा है स्वाद खोने का पाने से

कहीं गहरा है स्वाद खोने का पाने से।
ज़िंदगी को नापो, अहसास के पैमाने से।

बेचैन शहर में जीने की खातिर,
चुरा लाये हैं ख्वाब, सोच के खज़ाने से।

संगीन है मसला ज़िंदगी की ज़ानिब,
गुफ्तगूं चलने दो, चुपचाप इस ज़माने से।

घिरती है याद शाम सी दरीचें पर,
चले ही आये तुम, फिर किसी बहाने से।

जब भी देखा है खुद को बटोर कर,
चितकबरे जिस्म पर, दाग थें पुराने से।

उसका दिल घर सा लगता है

उसका दिल घर सा लगता है।
घर में अब डर सा लगता है।

फिर से कुछ माहौल गरम है
मिरे शहर को ज्वर सा लगता है।

तब्दील ए मिस्रा होने की खातिर
हर सितम बहर सा लगता है।

ज़ां से भी मै जा सकता हूँ
ज़हां का ये असर सा लगता है।

आलोक, कर लो तुम भी तैयारी
मंजर, उसी डगर सा लगता है।

हिन्द व हिन्दी का सम्मान
है प्रमाण देशभक्ति का
आइए करें
सृजन शब्द से शक्ति का

रचनाकार

विजय कुमार अग्रहरि 'आलोक'

कलश, १६ एम आई जी,
गोकुलग्राम आवास विकास कालोनी
निकट हैमिल्टन अकेडेमी
बीबी खेडा, पारा, लखनऊ २२६०११

Email- Vkagrahari2014@gmail.com
Mobile - 9414884649

'अन्तरा शब्दशक्ति' के प्रयासों का मै कायल हूँ। सच कहूँ तो पेरेलिटिक अटैक और दाहिना हाथ खराब होने के बाद मुझे लेखन की ओर दोबारा लौटने में प्रीति जी और 'अन्तरां शब्दशक्ति' ने मुझे बहुत शक्ति दी है। इस हेतु मै बहन प्रीति सुराना जी का बहुत ऋणी हूँ।

इस विचित्र कालखण्ड में हमें वापस जड़ से जुडने का मौका मिला है। आधुनिकता का सारा बनावटीपन पिघल कर गिर रहा है। प्रकृति पहली बार हमें घर में बन्द करके बाहर विचरण करने निकली है। हमने वर्षो कैद रखा था उसे। आज उसने हमे सबक दिया है किं संयम में रहना है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथो' के अपने पुराने पथ से हम भटक गये थे। हमे फिर से मानव बनने का मौका दिया है। हमने फिर से बांटना सीखा है। हमने फिर से सही खाना सीखा है। हमने फिर से सही जीना सीखा है।

कोरोना ने पारिस्थिक, प्राकृतिक और साम्बंधिक विडम्बनाओं की ऐसी तिर्यक स्थिति उपस्थित की है कि सर्जना को कई विषय मिले फिर अनेक रचनायें बनी और बनती जा रही हैं। अक्सर मेरी कविताएं लम्बी हो जातीं हैं। पर प्रीति जी ने २० पंक्तियों की सीमा दीं है, तो कुछ छोटी कविताएं एवं गजलें आपकी नज्र कर रहा हूँ। जिसमें से अधिकांश इसी काल खण्ड में लिखी गयी हैं।

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला – बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331
संपर्क – 9424765259, अणुडाकः antrashabdshakti@gmail.com

978-93-5372-165-7

मूल्य 50/-

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स
Website:- www.antrashabdshakti.com
Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/
Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/